अब कल आएगा यमराज

अभिमन्यु अनत

अब कल आएगा यमराज

अपने गले में लटके मंगलसूत्र के तमगे को वह अपने अँगूठे और दो अँगुलियों के बीच उलटती-पलटती रही। उसकी सूखी आँखें चारदीवारी की कसमसाती खामोशी को घूरती रहीं। उससे चंद कदमों की दूर पर ही करन अपनी पत्नी के हाथ के तमगे की

तरह अपने बदन के पुराने सोफे पर उलटता-पटलता जा रहा था वह पहला अवसर नहीं था कि करन उस तरह की छटपटाहट में था और अपने आपको असहाय पा रही थी। ऐसे अनेक क्षण बीत गए। वह शून्य के दायरे में खामोशी को झेलती रही।

और जब अपनी अचेतना से जागी तो करन की ओर देखा। छाती के पास एक-दूसरे से जकड़े उसके हाथ काँप रहे थे। कमरे में उमस थी, धुँधलका था। मौत का-सा सन्नाटा रह-रहकर टूटता था, जब करन मिरगी की आवाज में चिल्ला उठता। रंजीता को अपनी ओर देखते पाकर उसने परस्पर जुड़ी अपनी दोनों हथेलियों को मुक्त किया और घूँसे बाँधकर सोफे पर मुक्के मारने लगा। कमरे में गरमी तो थी ही, ऊपर से क्रोध के कारण उसके माथे से पसीने की अनगिनत धाराएँ बहे जा रही थीं। हाथों के साथ उसका सिर भी काँप उठा। रंजीता अपनी जगह से उठी। उसके हाथ से छूट जाने के कारण उसका मंगलसूत्र गले में झूल उठा। वह अपने पति के पास पहुँची। उसकी उत्तेजित मुट्ठियों को उसने अपने हाथों में ले लिया। करन ने याचना भरी दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा। उसके होंठ हिले और उनके बीच से उसकी पिपासित जीभ आगे-पीछे हुई। उसके हाथों को थपकियाँ देती हुई रंजीता बोली, 'धीरज धरो।' अपनी ओढ़नी के छोर से रंजीता ने उसके चेहरे पर से पसीना पोंछा। दूसरे कमरे से बच्ची ने रोना शुरू करके दोबारा अपनी प्यास की सूचना दी।

दूध न तो रंजीता के स्तनों में था और न ही पिछली बार की खरीदी डिबिया में। उषा दूसरे कमरे में रोती रही। रंजीता को एक बार लगा कि बच्चे को जन्म देकर वह भारी भूल कर बैठी थी। पर करती तो क्या - उसकी सास उसे उसे बाँझ कहने लग गई थी। शादी के अभी तीन साल ही तो हुए थे और उसकी सास ताने पर ताने देती हुई कहती थी कि पास-पड़ोस में उसके बाद शादी करनेवाली जोड़ियों के दो-दो बच्चे पैदा हो गए थे। किंतु वह अभी भी दादी बनने की अपनी लालसा को पूरा होते नहीं देख पा रही थी। लालसा जब पूरी हुई तो भी मरते-मरते यह कहती रह गई थी कि पोता होता तो किरिया-करम करता। अपनी सास की मौत के दो महीने बाद ही रंजीता को अपने पति और बच्ची के साथ वह घर छोड़ना पड़ गया था, जिसमें वह दुलहन बनकर आई थी। करन के मृत पिता की पहली पत्नी जमीन और घर पर अपने अधिकार को अदालत (और करन को किराए के घर तक) पहुँचा कर रही थी।

रंजीता ने दूसरे कमरे में पहुँचकर उषा को अपनी गोद में उठा लिया। चोली से अपने दूध रहित स्तन को बाहर करके उषा के मुँह के हवाले कर दिया। उसे मिनट भर चूसते रहने के बाद उषा फिर से रो उठी। दूसरे कमरे से करन के चिल्लाने-गिड़गिड़ाने की आवाज आई। रंजीता अपने पति और अपनी बच्ची की पुकारों को अपने अलग-अलग

कान से सुनती रही। उसने बच्ची को चारपाई पर रख दिया। उषा भी जोर से रो पड़ी। रंजीता ने अपने पड़ोस की खजीजा से पाए थर्मस से गुनगुने पानी को अपनी बच्ची की फीडिंग बोतल में भरा। चीनी मिलाकर बोतल को हिलाया। बोतल की चुसनी के जरिए पानी की दो बूँदों को अपनी हथेली पर टपकाकर उसके तापमान का अंदाजा लगाया। जब पता चल गया कि पानी बहुत गरम नहीं था तो उसने बच्ची को चारपाई पर से उठाकर फिर से गोद में ले लिया। चुसनी होंठों के बीच पहुँचते ही उषा पूरी रफ्तार के साथ चूसने लगी।

उधर दूसरे कमरे में करन का अपने आपसे जूझना जारी रहा। उसकी कराह और चीत्कार-मिश्रित आवाज जोर पकड़ती गई। उस आवाज से अनभिज्ञ उषा अपनी माँ को एकटक ताकती हुई बोतल के चीनी-मिश्रित पानी को खबोर की तरह पीती रही। अपनी बच्ची पर से आँखें हटाकर रंजीता ने सामने की ओर देखा। नंगी दीवार पर बस अधटूटे फ्रेम में एक तसवीर टेढ़ी लटकी हुई थी। धूल-धूसरित शीशे से बाहर झाँकते अपने सास-ससुर के चेहरों को वह देख रही थी। फोटोग्राफी किसी नौसिखिए की थी, इसलिए फोकस उसके सास-ससुर के चेहरों पर से कहीं अधिक उनके पीछे की दीवार पर था। रंजीता अपने ससुर के धुँधले चेहरे को देखती रही।

चेहरे पर एकदम वही बनावटी मुसकान थी जिस मुसकान के साथ उस पहले दिन उसने रंजीता के परिवार से कहा था, 'मेरे बेटे ने शराब की बात तो दूर, जीवन में कभी सिगरेट तक नहीं पी है।' रंजीता को हँसी आ गई, पर वह मुसकराकर रह गई। उसने अपनी नजर को अपनी सास की छवि पर फिसल जाने दिया। उसे अपनी सास की वह बात याद आ गई जो उसने उस पहले अवसर पर रंजीता की माँ से कही थी,'हमर लयकवा त रुपिया-पइसा के बीच में काम करेला, बहिन। तोहर बेटी रानी बनके हमार घर में रही।'

उस रात काफी देर तक अपने भविष्य के बारे में सोचती हुई रंजीता अपने आपसे तर्क करके यह मान गई थी कि बैंक का चपरासी भी तो बैंक के मैनेजर की तरह रुपए-पैसों की गंध और खनखनाहट के बीच में रहता है। लेकिन नौकरी और नौकरी का भेद तो उसे उस समय मालूम हुआ था जब शादी के चार लंबे वर्ष हो चले थे। राजनीति का ऊँट करवट बदल गया था। जिस मंत्री के लिए इस चुनाव से पहले के चुनाव में काम करने के फलस्वरूप करन बैंक में चपरासी की नौकरी पा सका था वह मंत्री तो नए चुनाव में अपने दल के साथ बुरी तरह पराजित हुआ था। उस भारी पराजय के तीसरे महीने के बाद ही पिछली सरकार की ओर से नियुक्त जो लोग तोहफे में प्राप्त नौकरी से हटाए गए, उनमें रंजीता का अपना पति भी था। अपनी योग्यता से कहीं अधिक राजनीतिक

पहुँच के बल पर पाई नौकरी से हाथ धोकर कभी सिगरेट और शराब न पीने वाला करन शहर के अपने उन मित्रों में शामिल हो गया था जिन्हें जिंदगी को आखिर जी लेने के लिए वह दूसरा बहाना था। उसी क्षण रंजीता की आँखों के सम्मुख अपने भविष्य का वह दूसरा रंग झिलमिला उठा था, जिसकी अज्ञात आशंका पहले ही से उसके जेहन में कौंधती रही थी।

चीनी-पानी पीकर उषा संतुष्टि में हाथ-पाँव डुलाकर माँ की गोद में ही सो गई। कुछ देर तक रंजीता उसे देखती रही। उधर उस दूसरे कमरे में करन की छटपटाहट क्रंदन का रूप ले चुकी थी। रंजीता अपनी बच्ची को सिकुड़ी चादर के ऊपर सुलाकर पति के पास आ गई। करन के काँपे जा रहे दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर वह उसे धैर्य बँधाती कि उससे पहले करन ने उसके हाथों को अपने हाथों में जकड़ लिया। हाथों में ताकत के अभाव के बावजूद वह अपनी पत्नी के दोनों हाथों को जोर से दबाकर बोल उठा, 'एक बार फिर हमजा से फोन पर बात करके देखो।'

'मैं दो बार उससे बात कर चुकी हूँ।'

'एक बार फिर...।'

अपने हाथों को उस जकड़ से छुड़ाकर रंजीता दीवार तक पहुँची, फोन, मिलाया और महज मिनट भर की बातों के बाद करन के पास लौट आई।

'क्या बोला?'

'पैसे के बिना वह एक ग्राम भी देने को तैयार नहीं।'

करन अपने दोनों हाथों के सहारे अपनी जगह से उठा। घर की छत को देखता हुआ कमरे की परिक्रमा करता रहा। जो लड़खड़ाहट उसकी आवाज में थी वही उसके कदमों में भी थी। आँखें सूखी और धँसी हुई। बदन की हड्डियाँ मांस-पेशियों से बाहर आ जाने कि प्रक्रिया में थीं। वह अपने सिर को दोनों हाथों से जकड़कर चिल्ला उठा और फिर एकाएक गिड़गिड़ाने लगा। रंजीता ने उसे थामने की चेष्टा की। वह छिटककर दूर जा खड़ा हुआ। रोने लगा, ठीक उसी तरह जैसे कि उसकी बच्ची दूध पीने के लिए रो उठती थी। जब करन का दूसरी बार विजड्रोवल इलाज हुआ था तो उम्मीद बन आई थी कि वह अब नशीली दवाओं का गुलाम बनने से अपने को रोक लेगा। डॉक्टरों ने भी यही कहा था कि तीसरी बार के लिए डिसइंटोक्सीकेशन की नौबत नहीं आनी चाहिए। वह जानलेवा हो सकता है। और जब रंजीता ने उससे कहा था कि कम-से-कम अब तो वह

उस दोजख से लौट आए तो उसे जवाब मिला था कि 'जिंदगी आगे बढ़ने के लिए होती है, पीछे लौटने के लिए नहीं।' रंजीता ने प्यार से कहा था, 'अच्छे रास्ते से मुड़ा नहीं जाता, लेकिन गलत रास्ते से लौट आना ही बुद्धिमानी होती है।' पर करन के लिए ये सब बेकार की बातें थीं।

करन को तीसरी बार अस्पताल में दाखिल कराने की नौबत आकार ही ले रही थी। पंद्रह दिनों तक उसे अस्पताल की चारपाई से बाँधकर रखा गया था, क्योंकि दौरे इतने भयानक रूप ले चुके थे। तीन महीनों तक उसके रीहेबिलिटेशन इलाज के बाद जब रंजीता उसे लेकर घर लौटी तो करन ने अपनी पत्नी के हाथों को अपने हाथों में लेकर वायदा किया था, 'इस बार सचमुच मैं उस गलत रास्ते से हमेशा के लिए लौट रहा हूँ।' पर तीन महीने बाद ही वह जिस रास्ते से लौट आया था उसी रास्ते को फिर से लौट गया; क्योंकि जीवन को जीने की चाह से जिंदगी से भागने की प्रक्रिया कहीं अधिक बुलंद थी। रंजीता का हाथ फिर अपने मंगलसूत्र पर जा टिका। अपनी बेटी को तो वह अपनी सूखी छाती देकर कुछ देर के लिए चुप करा देती थी, किंतु अपने पति को क्या देकर चुप करे? बस, उसकी ओर देखती रही। तभी मिरगी के जैसे स्वर में करन फिर चिल्ला उठा, 'देवा को फोन करो... देवा को। सुना नहीं?'

'देवा को तीन बार फोन कर चुकी हूँ। वह कुछ नहीं कर सकता।'

'क्यों कुछ नहीं कर सकता? मैं उसके लिए सबकुछ कर सकता हूँ और वह मेरे लिए...

उसे भुनभुनाता छोड़ रंजीता फोन के पास पहुँच गई। नंबर मिलाने के बाद लंबी घंटी जाती रही। फिर फोन का चोंगा उठाया गया। उधर से आवाज सुनकर वह बोली, 'मिशलीन! मैं हूँ रंजीता।'

'और हो ही कौन सकती है इतनी मधुर आवाजवाली।'

'तुम हमेशा मेरी मदद करती रही हो।'

'तुम तो मुझसे अधिक मेरी मुसीबत में काम आती रही हो।'

'मुझे दो सौ रुपए चाहिए।'

'बच्ची के दूध के लिए?'

'प्लीज, व्यंग्य मत करो।'

'मैं व्यंग्य नहीं कर रही, रंजू। तुम कब तक बच्ची के दूध के बहाने अपनी सहेलियों से करन के लिए जहर का बंदोबस्त करती रहोगी?'

'उसका दुःख देखा नहीं जाता।'

'एक खुदगर्ज के दुःख के लिए अपने को तबाह करना बंद करो। मैं शाम को आंत्वान के हाथों उषा के लिए दूध की दो डिबियाँ भेज रही हूँ। मैं तुम्हें करन के ड्रग के लिए पैसे नहीं दे सकती।'

कुछ क्षणों तक सन्नाटा छाया रहा। वह अपने पति के पास लौट आई। वह चीत्कार कर उठा। बेबस पत्नी को देख करन अपने बदन को ऐंठने लगा। उसकी उस पीड़ा को न देखकर रंजीता अपनी बच्ची के कमरे में आ गई। वह उषा के पैताने चारपाई पर लुढ़क गई। उसने दरवाजा बंद कर लिया था। उसे लगा कि कमरे में हौले-हौले धुँधलका फैलता जा रहा है और फिर पूरा कमरा अँधेरे में डूब गया। वह अँधेरा रंजीता को पसंद नहीं आया। उस घटाटोप से वह डर गई। उसमें उसे अपनी उषा दिखाई नहीं पड़ रही थी। उसने अपने पूरे शरीर में स्पंदन पाकर आँखें खोल दीं। चारपाई पर देखा। उषा नींद में हँस रही थी। रंजीता को लगा कि उसकी सास की बात गलत थी कि नींद में बच्चे भगवान से बात करते हैं और हँसते हैं। नींद में बच्चे भगवान के साथ नहीं हँसते हैं बल्कि अपने माँ-बाप की बेबसी पर हँसते हैं।

तभी दूसरे कमरे में कुरसी से टकराने की आवाज आई। शीशे के फूलदान के चकनाचूर होने की झनझनाहट सुनाई पड़ी। रंजीता ने अपने को बीच कमरे में पाया। उसे वह कोई पिंजरा-सा लगा। पर नहीं, वह पिंजरा होता तो भीतर रोशनी के साथ बाहर की ठंडी हवा उसके भीतर की उसम को मिटा जाती। वह कैदखाना भी नहीं था। कैदखाने की कोठरी इतनी विस्तृत नहीं हुआ करती। अगर वह सचमुच घर में थी तो उस घर में... रंजीता अपनी खामोशी के भीतर चिल्ला उठी - यह घर है तो इसमें से बाहर निकलने का दरवाजा क्यों नहीं? ताजा हवा आने के लिए खिड़की क्यों नहीं? मिशलीन उससे बोली थी कि हर आदमी की अपनी अलग दुनिया होती है। तो क्या वह जहाँ थी वह उसकी अपनी दुनिया थी? इतना सीमित था वह संसार कि उसकी अपनी ही साँसें जगह न पाकर उसी से टकरा रही थीं। रंजीता अपने आपसे पूछती गई - 'कौन हूँ मैं? रंजीता? पत्नी, माँ या महज एक साधन, एक उपकरण।' मिशलीन तो उसकी कॉलेज की दोस्त थी। रंजीता जहाँ थी वहीं रह गई, जबकि मिशलीन कुछ-से-कुछ बन गई थी। वह अब कॉलेज में फ्रेंच साहित्य की अध्यापिका थी और अभी उस दिन उसी अध्यापक के लहजे में बोल गई थी - 'हम सभी कोमोडिटीज से खुद कोमोडिटी हैं।' ये

भगवान, मजहब, रिश्ते, संस्कृति - सब कुछ मन को बहलाने के छलावे ही तो हैं। फिर भी अपने पति के साथ गिरजाघर जाती थी और रंजीता से भी कहती रहती थी कि वह भी पूजा-पाठ में लगी रहे। छलावा मानकर भी? हाँ।

आज दिन भर में कोई दसवीं बार रंजीता अपने गले में लटके मंगलसूत्र को हाथ में लेकर उसके लॉकेट को निहारती रही। शादी से पहले वह हिंदी में रूमानी उपन्यास खूब पढ़ा करती थी। कई उपन्यासों में वह राखी और मंगलसूत्र के महत्व को पढ़ती आई थी। हिंदी फिल्मों में भी इन दो सूत्रों की उसने कम महिमा नहीं देखी थी। वह दस वर्ष की रही होगी, जब उसने पहली बार अपने बड़े भाई की कलाई में राखी बाँधी थी। उससे पहले भी बाँधी हो तो उसे याद नहीं। वह अपने एकमात्र भैया को आठवीं बार के लिए राखी बाँध पाती कि उसका भाई लगभग महीने भर की बीमारी के बाद चल बसा था। जब उसने उस दूसरे सूत्र को अपने गले में पहली बार बँधते पाया था तो मन-ही-मन उसने भगवान से प्रार्थना की थी कि कम-से-कम इस सूत्र की हकदार तो वह जीवन के अंतिम क्षण तक बनी रहे। विवाह के छह साल बाद अभी सात दिन पहले जब उसने अपने पति को ब्राउन शुगर के लिए मछली की तरह छटपटाते हुए पाया था तो मन में वह खयाल पहली बार आया था। वह खयाल जो आज सुबह से लगातर उसके मन में खलबली सी मचाए हुए था। पहली बार तो मिशलीन ने उसे वैसा करने से रोक लिया था। बोली थी, 'हमारे मजहब में जो महत्व शादी की अँगूठी का होता है उससे कहीं ज्यादा तुम लोगों के धर्म में मंगलसूत्र का होता है।'

मिशलीन टेलीविजन की हर हिंदी फिल्म देखती थी। कई अवसरों पर तो अपने पति को उसके फुटबॉल मैच के सीधे प्रसारण को देखने से महरूम रख जाती थी। रंजीता को समझते देर नहीं लगी कि रक्षाबंधन के महत्व को मिशलीन ने हिंदी फिल्मों से ही जाना था। आज काफी झिझक के बाद जब रंजीता अपनी सहेली को फोन करने को विवश हुई थी तो यही सोचकर कि एक बार फिर मिशलीन उसे वह अनर्थ करने से रोक लेगी; पर इस बार उसकी सहेली उसे पैसे देने के लिए तैयार नहीं हुई। दरवाजे पर जोरदार धक्का देकर करन भीतर आ गिरा। रंजीता ने झपटकर उसे उठाया। गनीमत थी कि कोई चोट नहीं लगी थी। फर्श पर से उठते हुए करन फिर से वहीं लुढ़क गया। उसका साँवला चेहरा पीला पड़ चुका था। वह कराह उठा, 'आज दो दिन हो गए।' वह आँखों में याचना लिए टुकुर-टुकुर रंजीता को देखता रहा। रंजीता चुप रही। करन ने अपने काँपते हाथों से उसकी बाँहों को पकड़ लिया।

'तुम बोली थीं आज हर हालत में व्यवस्था कर दोगी।'

'सुबह से हाथ-पाँव मार रही हूँ। दो जगह मिलने की उम्मीद बँधी, पर दोनों ओर से हाथ में पैसा दूसरे हाथ में माल देने की शर्त है।'

'जिनके लिए मैं प्रबंध करता रहा वे भी मुकुर गए। तुम मेरी घड़ी गिरवी रखकर ले आओ।'

'कौन सी घड़ी?'

'एक ही तो घड़ी थी मेरी। वह सेईको, जो तुमने ही मुझे दी थी।'

'उसे तो खुद हमजा के पास गिरवी छोड़ आए हो।'

'घड़ी उसी के पास है तो फिर वह माल देने को तैयार क्यों नहीं?'

'एक बार तुम खुद माल ले आए थे, उसके बाद दो बार संतोष को भेजकर मँगवाना पड़ा। तीन बार के बाद अब घड़ी उसकी हो गई है।'